

जैन कला एवं शिल्प

सारांश

समय की शिला पर, मधुर चित्र कितने।
किसी ने बनाये, किसी ने मिटाये।।

के अनुसार कला का उदय मानव की सौन्दर्य भावना का परिचायक है। इस भावना की तृप्ति के लिए और मानसिक विकास के लिए विभिन्न कला एवं शिल्पों का उदय प्राचीन काल में हुआ। प्राच्य एवं पाश्चात्य सभी विद्वानों ने कला के संबंध में पर्याप्त विवेचन किया है। संस्कृत साहित्य में ज्ञान का विभाजन दो रूपों में किया गया है। विद्या और उपविद्या। विद्या के अन्तर्गत काव्य को स्थान दिया गया है। और विभिन्न कलाओं को उपविद्या के अन्तर्गत। भर्तृहरि ने काव्य एवं कला को भिन्न माना है। उनके अनुसार

“ साहित्य संगीत कला विहीनः साक्षात् पशुपुच्छविषाणहीनः ” :-
अर्थात् साहित्य, संगीत एवं कला के ज्ञान से रहित मनुष्य साक्षात् पशु ही है।
अतः, कला और शिल्प का महत्व स्वयं सिद्ध है।

मुख्य शब्द : पशुपुच्छविषाणहीनः, आनन्दातिरेक, नृत्यगीतप्रमृतयः

प्रस्तावना

‘ कला ’ शब्द की रचना कल + अच + ट, धातु एवं प्रत्यय के संयोग से हुई है। कला का शाब्दिक अर्थ है – किसी वस्तु का छोटा अंश, चन्द्र मण्डल का षोडश अंश ! राशि के 30 वें भाग का साठवां अंश। ‘कल’ धातु भी आवाज, गणना आदि अर्थों की सूचक है। आवाज अथवा ध्वनि से हमारा आशय अव्यक्त से व्यक्त की ओर उन्मुख होना है, क्योंकि कलाकार भी अपने अव्यक्त भावों को कतिपय साधनों के द्वारा व्यक्त करता है।

डॉ० रामदत्त भारद्वाज ने ‘कला’ शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार भी की है :
“ कवि’ और “ काव्य” – इन दोनों शब्दों के प्रथमाक्षरों से ‘कला’ शब्द निर्मित है। कवि का लास्य ही कला है। ‘लास्य’ शब्द का कोशार्थ है – नृत्य अथवा उछल-कूद। कवि के काव्य में कवि के अव्यक्त भावों की अभिव्यक्ति होती है। उसके अव्यक्त भाव शब्दों के माध्यम से और आनन्दातिरेक के कारण नृत्य करने लगते हैं। “ केवल कवि ही क्यों अन्य कलाकार ‘वास्तुकार, मूर्तिकार, चित्रकार आदि’ भी अपने अव्यक्त भावों को अपनी रचना के माध्यम से व्यक्त करते हैं। कला की तृतीय व्युत्पत्ति इस प्रकार की जा सकती है :-क + ला। क त्र कामदेव, सौन्दर्य, प्रसन्नता, हर्ष, आनन्द। ला त्र देना। ‘कं लाति ददातीति कला’ अर्थात् सौन्दर्य की अभिव्यक्ति द्वारा सुख प्रदान करने वाली वस्तु का नाम कला है। इसी भाव में दण्डी ने कला को “ नृत्यगीतप्रमृतयः – कला कामार्थ संश्रया ” कहा है।

क्षेमराज ने ‘शिवसूत्र विमर्शिणी’ में कला को वस्तु के रूप संवारने वाली प्रतिभा या अभिव्यक्ति कहा है। “ कलयति स्वरूपं आवेशयति वस्तूनि वा” अर्थात् कला वस्तु के स्वरूप को सुशोभित या अलंकृत करती है। भारतीय विद्वानों ने कला को साहित्य, ज्ञान, विद्या आदि से भिन्न स्वीकार किया है। सम्भवतः भरत ने इसीलिए – ‘ न तज्ज्ञानं न तच्छिल्पं न सा विद्या न सा कला ’ कहा है। अभिनवगुप्त नाट्यशास्त्र की इस पंक्ति की व्याख्या करते हुए कला को “ कला गीत- वाद्यादिका” लिखते हैं। इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि “ भारत में कला शब्द का प्रयोग ‘ Fine Arts ’ के लिए भी होता है।

कला की परिभाषा

श्री रवीन्द्रथानाथ टैगोर ने ‘ Personality ’ नामक पुस्तक में What is art’ शीर्षक लेख में ज्ञान के दो पक्ष कला और विज्ञान स्वीकार करते हुए—इनका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया है

‘In art man reveals himself and not his object, His objects have their place in books of information and science’ अर्थात् कला मनुष्य की वाह्यवस्तुओं की अपेक्षा सानुभूति की अभिव्यक्ति है। वस्तुतः रवीन्द्र के मत में कला का प्रधान लक्ष्य व्यक्तित्व की अभिव्यक्ति करना है। कला के कार्य का उल्लेख करते हुए रवीन्द्र लिखते हैं :- “ कला का कार्य मानव के लिए सत्य



आर० के० राय

प्राचार्य

छुट्टनलाल काका पी०जी०

गर्ल्स कालेज

खत्रीवाड़ा, सिकन्द्राबाद,

बुलन्दशहर

और सौन्दर्य की एक सजीव सृष्टि करना है" — ' This building of man's true world the living world of truth and beauty is the function of art.'

पाश्चात्य विचारक रस्किन प्रत्येक महान कला को ईश्वरीय कृति के प्रति मानव के आह्लाद की अभिव्यक्ति मानते हैं। All great art is the expression of man's great delight in God's work and not his own ' फ्रायड के मत में कला हृदय में दबी हुई वासनाओं का अभ्युत्थान अथवा व्यक्त रूप है। कला के सम्बन्ध में टाल्सटाय ने सविस्तार लिखा है कि — ' कला की प्रक्रिया अपने हृदय में उठी हुई भावनाओं की अनुभूति को क्रिया, रेखा, वर्ण, ध्वनि, शब्द आदि के सहारे दूसरे के हृदय तक पहुँचा देना ही है।—' 'To evoke in ourself a feeling one has once experience and having looked it in one self then by means of movements, line, colours, sounds or forms expressed in words so to transmit that feeling that is the activity of art ' आचार्य शुक्ल एक की अनुभूति को दूसरे तक पहुँचा देना ही कला का रहस्य स्वीकार करते हैं। इसी प्रकार गुप्त जी " अभिव्यक्ति की कुशल शक्ति ही तो कला" कहते हैं। उपर्युक्त विभिन्न विद्वानों की कला संबंधी विचारों के आधार पर हम कह सकते हैं कि संस्कृत के आचार्यों का कला सम्बन्धी दृष्टिकोण व्यापक है तथा पाश्चात्य आलोचकों से भिन्न है।

'अतः, बहुधा कहा जाता है कि जैन-धर्म ने जीवन के विधान पक्ष को पुष्ट न कर निषेधात्मक वृत्तियों पर ही विशेष भार दिया है। किन्तु यह दोषारोपण यथार्थतः जैन-धर्म की पूर्ण जानकारी न होने का परिणाम है। जैन धर्म में अपनी अनेकान्त दृष्टि के अनुसार जीवन के समस्त पक्षों पर यथोचित ध्यान दिया गया है। अच्छे और बुरे के विवेक से रहित मानव व्यवहार के परिष्कार के लिए कुछ आदर्श स्थापित करना और उनके अनुसार जीवन की कुत्सित वृत्तियों का निषेध करना संयम की स्थापना के लिए सर्वप्रथम आवश्यक होता है। जैन धर्म ने आत्मा को परमात्मा बनाने का चरम आदर्श उपस्थित किया, उस ओर गतिशील होने के लिए अपने कर्म सिद्धान्त के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को पूर्णतः उत्तरदायी बनाया और प्रेरित किया, तथा व्रत-नियम आदि धार्मिक व्यवस्थाओं के द्वारा वैयक्तिक, सामाजिक व आध्यात्मिक अहित करने वाली प्रवृत्तियों से उसे रोकने का प्रयत्न किया। किन्तु उसका विधान पक्ष सर्वथा अपुष्ट रहा हो, सो बात नहीं। इस बात को स्पष्ट समझने के लिए जैन-धर्म ने मानव जीवन की जो धाराएं व्यवस्थित की हैं उसकी ओर ध्यान देने की आवश्यकता है। मुनिधर्म के द्वारा एक ऐसे वर्ग की स्थापना का प्रयत्न किया है जो सर्वथा निःस्वार्थ, निःस्पृह और निरीह होकर बीतराग भाव से अपने और दूसरों के कल्याण में ही अपना समस्त समय व शक्ति लगाये। साथ ही गृहस्थ धर्म की व्यवस्थाओं द्वारा उन सब प्रवृत्तियों को यथोचित स्थान दिया गया है, जिनके द्वारा मनुष्य सभ्य और शिष्ट बनकर अपनी, अपने कुटुम्ब की तथा समाज व देश की सेवा करता हुआ उन्हें उन्नत बना सके। जैन-परम्परा में कला की उपासना को जो स्थान दिया गया है, उससे उसका यह विधान पक्ष और भी स्पष्ट हो जाता है।

कला के भेद-प्रभेद

प्राचीनतम जैन-आगम में बालको को उनके शिक्षण काल में शिल्पों और कलाओं की शिक्षा पर जोर दिया गया है और उन्हें सिखाने वाले कलाचार्यों व शिल्पाचार्यों का अलग-अलग उल्लेख मिलता है। गृहस्थों के लिए जो षट्कर्म बतलाये गये हैं — उनमें असि, मसि, कृषि, विद्या व वाणिज्य के अतिरिक्त शिल्प का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। जैन-साहित्य में स्थान-स्थान पर 62 कलाओं का उल्लेख पाया जाता है। " 'समवायांगसूत्र' के अनुसार " 62 कलाओं के नाम ये हैं :- 1. लेख, 2. गणित, 3. रूप, 4. नृत्य, 5. गीत, 6. वाद्य, 7. स्वरगत, 8. पुश्करगत, 9. समताल, 10. धत्, 11. जनवाद, 12. पौखच्चं, 13. अष्टापद, 14. दगमद्दि (उदकमृत्तिका), 15. अन्नविधि, 16. पानविधि, 17. वस्त्रविधि, 18. शयनविधि, 19. अज्जं (आर्या), 20. प्रहेलिका, 21. भागधिका, 22. गाथा, 23. श्लोक, 24. गंधयुक्ति, 25. मधुसिक्य, 26. आभरणविधि, 27. तरुणीप्रतिकर्म, 28. स्त्रीलक्षण, 29. पुरुषलक्षण, 30. हयलक्षण, 31. गजलक्षण, 32. गाण (वृषभ-लक्षण), 33. कुक्कुटलक्षण, 34. मेंढालक्षण, 35. चक्रलक्षण, 36. छयलक्षण, 37. दंडलक्षण, 38. असिलक्षण, 39. मणिलक्षण, 40. काकनिलक्षण, 41. चर्मलक्षण, 42. चंद्रलक्षण, 43. सूर्यचरित, 44. राहुचरित, 45. ग्रहचरित, 46. सौभाग्यकर, 47. दुर्भाग्यकर, 48. विद्यागत, 49. मंत्रगत, 50. रहस्यगत, 51. समास, 52. चार, 53. प्रतिचार, 54. व्यूह, 55. प्रतिव्यूह, 56. स्कंधावारमान, 57. नगरमान, 58. वास्तुमान, 59. स्कंधावारनिवेश, 60. वास्तुनिवेश, 61. नगरनिवेश, 62. ईसत्थं (इश्वस्त्र), 63. छरुघवाय (त्सरुप्रवाद), 64. अश्वशिक्षा, 65. हस्तिशिक्षा, 66. धनुर्वेद, 67. हिरण्यपाक, सुवर्णपाक, मजिपाक, धातुपाक।, 68. बाहुयुद्ध, दण्डयुद्ध, मुष्टियुद्ध, युद्ध, निर्युद्ध, सुद्धापयुद्ध।, 69. सूत्रक्रीडा, नालिकाक्रीडा, वृत्तक्रीडा, धर्मक्रीडा, चर्मक्रीडा।, 70. पत्रछेद्य, कटकछेद्य।, 71. सजीव, निर्जीव।, 72. शकुनरुत।

इस प्रकार जैनकला एवं शिल्प का क्षेत्र सीमित रहा है, फिर भी तत्कालीन सांस्कृतिक क्षेत्र में उसने बड़ी लोकप्रियता प्राप्त की। धर्म, कीर्ति, साहित्य और दर्शन के अतिरिक्त जैन मतावलंबियों ने भारतीय कला में भी महत्वपूर्ण योगदान दिये हैं। उनकी अनेक प्राचीन हस्तलिखित पुस्तकों के हाशियों पर रंग-बिरंगे चित्र और बल्लरियाँ बनी पाई जाती हैं—जो पूर्व मध्यकालीन भारतीय चित्रकला के उच्चकोटि के नमूने न होने पर भी जैनकला को प्रदर्शित करते हैं।

जैनियों की सबसे अधिक कला स्मारक , स्तूप, मूर्तियाँ, मन्दिर, मठ अथवा गुफाओं के रूप में विद्यमान हैं। दूसरी शदी ई०पू० से 17वीं शदी ई० तक इनका क्रम अनवरत रूप से चलता रहा। जब जैन धर्म दक्षिणी और पश्चिमी भारत में फैला तो वहाँ अनेक स्थानों में जैन मन्दिर, मठ और बौद्ध गुफाएं निर्मित हुईं। स्थापत्य और मूर्तिकला के क्षेत्रों में प्राचीन जैन और बौद्ध कलाकृतियों में कोई विशेष अन्तर नहीं है। उड़ीसा के पुरी जिले में उदयगिरि और खण्डगिरि में सबसे प्राचीन जैन गुफाएं मिलती हैं—जो 150 ई०पू० की मानी जाती हैं। यहां 35 गुफाएं मिली हैं। इनमें सबसे आकर्षक अंग खम्भों के ऊपर बने हुए ब्राकेट (BracketS) है — जो तरह-तरह के पेड़-पौधों के रूप में निर्मित की गयी है। इनमें सबसे आकर्षक 'रानीगुम्फा' और 'गणेशगुम्फा' नामक गुफाएं हैं।

पश्चिमी भारत में एलोरा में भी कई जैन गुफाएं मिली हैं। वे सन् 800-900 ई० की बनी हुई हैं। इनमें सबसे अधिक प्रसिद्ध इन्द्रसभा एक दो मंजिली गुफा है—जिसके ऊपरी तले में जैन तीर्थकरों की मूर्तियां बनी हुई हैं और इस तले के स्तंभों और दिवालों पर बड़े सुन्दर खनित चित्र बने हुए हैं।

मन्दिर

मध्य भारत में खजुराहो में कई जैन-मंदिर 10 वीं और 11 वीं सदी के बने हुए मिले हैं। इनमें से पार्श्वनाथ, शान्तिनाथ और आदिनाथ नामक मंदिर जैन मंदिर हैं। ये सब 11 वीं सदी के बने हैं, परन्तु इनकी कार्निशों में अनेक हिन्दू देवी-देवताओं की मूर्तियां बनी हुई हैं जो हिन्दू और जैन मतों की साहिष्णुता को प्रदर्शित करती हैं। आबू पर्वत पर सबसे प्रसिद्ध जैन मंदिर 11 वीं से 13 वीं सदी के बने हैं। इन मंदिरों के शिखर खजुराहो के मंदिरों के शिखरों के समान हैं और इनकी संगमरमर से बनी छतों और स्तम्भों पर अनुपम अलंकरण खोदे गये हैं जो उड़ीसा के मंदिरों के चित्रों के समान सर्वोच्च कोटि के तो नहीं हैं, परन्तु अपने ढंग की कला के अद्वितीय नमूने हैं।

काठियाबाद के गिरनार और पालीतान पहाड़ियों पर रामपुर (जोधपुर), पारसनाथ (बिहार), श्रवणवेलगोला (मैसूर) में वृहत समूह बने हुए हैं। शतुंजय पहाड़ी पर 500 मंदिर हैं। यहाँ जैन तीर्थकरों की चतुर्मुखी मूर्तियां भी मिलती हैं—जो सामायिक हिन्दू कला के अनुरूप हैं। इस प्रकार, जैनकलाकारों ने प्रतिभाशास्त्र के विधि-विधानों पर विशाल मंदिरों तथा भव्य प्रतिमाओं का निर्माण कर कला की परम्परा को समृद्ध किया। प्रस्तर तथा धातु से निर्मित ये जैन मूर्तियां न केवल जैन धर्म की भक्ति भावना को अपितु, उनके निर्माता कलाकारों की गंभीर कला साधना को भी द्योतित करती हैं। कुशाणयुग और गुप्तयुग के लगभग 500 वर्षों के अन्तराल में जैनमूर्ति कला का स्वर्णयुग रहा है, तथा कन्नौज के हर्षवर्धन (600 ई०) से लेकर दक्षिण के चोलों, पल्लवों और चालुक्यों के साथ (1200 ई०) तक निरन्तर उनका निर्माण होता रहा। पल्लवराज महेन्द्रवर्मन के समय (7 वीं शती) निर्मित सितनवासल गुफा की पांच जैन मूर्तियां जैन कला की महत्वपूर्ण देन हैं।

मूर्तिकला की अपेक्षा चित्रकला के क्षेत्र में जैनों का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। भारतीय चित्रकला की समस्त शैलियों में 15वीं शती ई० से पहले के जितने भी चित्र प्राप्त हैं, उनमें मुख्यतया तथा प्राचीन जैनचित्रों की हैं। प्राचीन महत्व के ये जैन चित्र दिगम्बर जैनियों से सम्बद्ध हैं, जिन्होंने अपने सम्प्रदाय सम्बन्धी ग्रंथों को चित्रित करवाने में बड़ी रुचि ली। इन आरंभिक जैन चित्रों को विद्वानों ने पश्चिमी गुजरात तथा आपभ्रंश शैली का नाम दिया है।

ऐतिहासिक विकास-क्रम की दृष्टि से 10 वीं शती ई० से लेकर 15 वीं शदी ई० तक की चित्रकला-परम्परा को जीवित बनाये रखने में जैन कलाकारों का सर्वाधिक योगदान रहा है। जैन चित्रकला के मुख्यतः तीन माध्यम हैं — ताड़पत्र, कपड़ा तथा कागज तीर्थाकरों के दोनों पार्श्वों में यक्ष-यक्षियों के युगल चित्र वस्तुतः जैनतीर्थकरों एवं कलाकारों के लोक-जीवन के प्रति अनुराग के प्रतीक हैं। जैन साहित्य के निर्माताओं ने जिस प्रकार लोक भाषाओं को अपनाकर लोक-जीवन के प्रति अपनी निष्ठा को व्यक्त

किया, उसी प्रकार जैन कलाकारों ने अपनी कलाकृतियों में लोक-विश्वासों को अभिव्यंजित कर लोक-सामान्य के प्रति अपनी गहन अभिरुचि को प्रकट किया है, इस प्रकार “ Art is beauty, beauty is truth, and truth is God ” सदर्थ-ग्रन्थ

1. भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान — डा० हीरालाल जैन।
2. प्राचीन भारतीय कला एवं संस्कृति — सिंह एवं यादव।
3. प्राचीन भारतीय संस्कृति का इतिहास — भटनागर एवं शुक्ला।
4. भारतीय संस्कृति और कला — वाचस्पति गैरोला।
5. जैन और बौद्ध धर्म — श्रीमती शशि श्रीवास्तव एवं कु० जमाल मुख्त्यार।
6. प्राचीन भारतीय शासन पद्धति — A. S. Altaker
7. प्राचीन भारतीय सामाजिक एवं आर्थिक संस्थाएँ — डा० कैलाश चन्द्र जैन।
8. जैन-आचार— डा० मोहन लाल मेहता।
9. प्राचीन भारत का राजनैतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास — प्रो० रतिमानु सिंह नाहर।
10. जैन कला — डा० आर० के० राय।
- 11- Aesthetic — Prof. Croche.
12. सौन्दर्य के आयाम — डा० नगेन्द्र।